Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

न्यायदर्शन में सिद्धान्त : एक समीक्षा

सन्दीप कुमार मिश्र
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद

शोध आलेख सार – न्याय के पूर्व तथा उत्तर अंग संशय तथा प्रयोजन दो पदार्थों के वर्णन के पश्चात् न्याय के आधार सिद्धान्त नामक षष्ठ पदार्थ का वर्णन करते हैं। सिद्धान्त विषयक सूत्र का अवतरण देते हुए भाष्यकार वात्स्यायन, जिनका दूसरा नाम 'पक्षिलस्वामी' भी प्राप्त होता है, कहते हैं कि– ''यह ऐसा ही है' इस प्रकार से स्वीकार किये जाने वाले अर्थ (विषय) के समुदाय को 'सिद्ध' कहते हैं।

मुख्य शब्द – न्याय, संशय, प्रयोजन, पक्षिलस्वामी, वात्स्यायन, न्यायसूत्र।

महर्षि गौतम अपने न्यायसूत्र के प्रथम सूत्र में न्यायाभिमत ''षोडश पदार्थों के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस (मोक्ष) प्राप्ति को स्वीकार करते हैं।[1] इन षोडश पदार्थों में प्रथम पदार्थ के रूप में महर्षि गौतम ''प्रमाण'' का नामोल्लेख सर्वप्रथम करते हैं। इसका कारण यह है कि प्रमाण के द्वारा ही अन्य पदार्थों का सम्यक ज्ञान हो सकता है। प्रमाण के अतिरिक्त अन्य जितने भी पदार्थ हैं, सामान्यतः उन्हें प्रमेय नाम से अभिहित किया जाता है, क्योंकि प्रमाणों के द्वारा जिसका ज्ञान कराया जाय वही प्रमेय होता है।[2] वैसे तो 'न्यायसूत्र' में ''प्रमेय को अलग पदार्थ के रूप में उल्लिखित किया गया है, जिसकी संख्या 12 (बारह) है।''[3]

न्याय के पूर्व तथा उत्तर अंग संशय तथा प्रयोजन दो पदार्थों के वर्णन के पश्चात् न्याय के आधार सिद्धान्त नामक षष्ठ पदार्थ का वर्णन करते हैं। सिद्धान्त विषयक सूत्र का अवतरण देते हुए भाष्यकार वात्स्यायन, जिनका दूसरा नाम 'पक्षिलस्वामी' भी प्राप्त होता है, कहते हैं कि– ''यह ऐसा ही है' इस प्रकार से स्वीकार किये जाने वाले अर्थ (विषय) के समुदाय को 'सिद्ध' कहते हैं। उस सिद्ध विषय की संस्थिति (अच्छी व्यवस्था) 'सिद्धान्त' कहलाती है। संस्थिति से तात्पर्य है, 'ऐसा ही होना चाहिए' इस तरह की व्यवस्था, अर्थात् इस प्रकार निश्चय। यही धर्मों का नियम भी है। अर्थात् धर्मनियम भी वही है।''[4] न्यायसूत्रकार महर्षि गौतम सिद्धान्त के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– ''तन्त्र ही है अधिकरण (आश्रय) जिन अर्थों का, उनके अभ्युपगमसंस्थिति' अर्थात् धर्मनियमरूप 'इत्थंभावव्यवस्था' अर्थात् यह ऐसा ही है ऐसी व्यवस्था सिद्धान्त कहलाती है।''[5] इसमें 'तन्त्र' शब्द से कहे जाते हैं', प्रमेय पदार्थ। तन्त्र का अर्थ होता है प्रमाण। वह प्रमाण

जिन प्रमेयपदार्थों का ज्ञापक (जानने वाला) है, ऐसे प्रमेयपदार्थों की इत्थंभावव्यवस्था को सिद्धान्त कहते हैं। न्यायभाष्य के अनुर सिद्धान्त वह है जो 'यह' है इस रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।[6]

आचार्य वरदराज सिद्धान्त को बताते हुए कहते हैं कि– ''जो अर्थ प्रामाणिक रूप से सिद्ध हो उसे सिद्धान्त कहा जाता है।''[7] इसी प्रकार का आशय प्रकट करते हुए आचार्य केशव मिश्र भी कहते हैं कि– ''जिस मन्तव्य को प्रामाणिक रूप में मान लिया जाता है, वह सिद्धान्त है।''[8]

सिद्धान्त के प्रकार को स्पष्ट करते हुए महर्षि गौतम कहते हैं कि वह सिद्धान्त नामक पदार्थ चार ही प्रकार का होता है।''[9] इसी प्रकार तार्किकरक्षाकार आचार्य वरदराज भी सिद्धान्त के भेद को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''सिद्धान्त के चार भेद होते हैं।''[10] इसी प्रकार आचार्य ''केशव मिश्र भी सिद्धान्त के चार ही प्रकार मानते हैं।''[11] सिद्धान्त के जो चार प्रकार भेद आचार्यों के द्वारा स्वीकार किये गये हैं, उनके नाम इस प्रकार है–

1. सर्वतन्त्र. सिद्धान्त।
2. प्रतितन्त्र सिद्धान्त।
3. अधिकरण सिद्धान्त।
4. अभ्युपगम सिद्धान्त।

इन चार प्रकार के सिद्धान्तों में से प्रथम सर्वतन्त्रसिद्धान्त का स्वरूप बताते हुए न्यायसूत्रकार महर्षि गौतम कहते हैं कि– ''जिस अर्थ (विषय) का किसी भी शास्त्र में विरोध न हो अर्थात् सम्पूर्ण शास्त्रों का अभिमत हो एवम् अपने शास्त्र में जिसका प्रतिपादन किया गया हो, ऐसे अर्थ (विषय) की 'इत्थंभावव्यवस्था' को 'सर्वतन्त्र सिद्धान्त' कहते हैं।[12]

भाष्यकार वात्स्यायन इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि– जैसे– ''घ्राण, रसना, चक्षु आदि इन्द्रिय हैं तथा गन्ध, रस, रूप आदि इन्द्रियों के विषय हैं, पृथिवी, जल, इत्यादि भूत द्रव्य हैं तथा 'प्रमाणों से प्रमेय पदार्थ का ग्रहण होता है'– ये सिद्धान्त सभी शास्त्रों में समानतया गृहीत हैं, अतः इन्हें 'सर्वतन्त्रसिद्धान्त' कहा जाता है।''[13]

तार्किकरक्षाकार आचार्य वरदराज इस सर्वतन्त्र सिद्धान्त के स्वरूप को बताते हुए कहते हैं– ''सभी तन्त्रों के विरुद्ध न जाने वाला, जो पदार्थ अपने शास्त्र में सिद्ध हो, उसे सर्वतन्त्र सिद्धान्त कहते हैं।''[14] जैसे– प्रमाण से प्रमेय की सिद्धि। इसी प्रकार इस सिद्धान्त के विषय में कहा गया है कि ''यह सिद्धान्त सभी शास्त्रों से अनुमत तथा स्वशास्त्र में भी सिद्ध है।''[15] इसी प्रकार इसे अन्य उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि जैसे घ्राण आदि इन्द्रियाँ हैं, गन्ध आदि इन्द्रियों के विषय हैं, यह मानने में किसी शास्त्र का विरोध नहीं है तथा इसकी न्यायशास्त्र में भी स्वीकृति है, अतः यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। नव्यमत में तो वादी प्रतिवादी दोनों के द्वारा स्वीकृत कथा के अनुकूल मन्तव्य ही सर्वतन्त्र सिद्धान्त हैं।

तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र इसे बताते हुए कहते हैं कि– ''सर्वतन्त्र सिद्धान्त वह है, जिसमें केवल धर्मी की सत्ता की स्वीकृति हो।''[16] तात्पर्य यह है कि शब्द आदि धर्मी की सत्ता सभी किसी न किसी रूप में

स्वीकार करते हैं, उसके नित्यता, अनित्यता आदि धर्मों के विषय में विवाद हो सकता है। अतः धर्मी की स्वीकृति सर्वतन्त्र सिद्धान्त है।

सिद्धान्त के दूसरे प्रकार 'प्रतितन्त्र' सिद्धान्त का लक्षण करते हुए महर्षि गौतम कहते हैं कि –''समान (स्वमतानुयायी) शास्त्र में सिद्ध हो,परन्तु दूसरे शास्त्रों में सिद्ध न हो, तो ऐसे सिद्धान्त को प्रतितन्त्रसिद्धान्त कहते हैं।''[17] जैसे सांख्य तथा योग ये दोनों परस्पर समान शास्त्र हैं तथा न्याय एवं वैशेषिक शास्त्र में जिसकी सिद्धि है और सांख्ययोगरूप परशास्त्र में जिसकी सिद्धि नहीं है, ऐसे सिद्धान्त को 'प्रतितन्त्रसिद्धान्त' कहते हैं। इस प्रकार समान (स्वमतानुयायी) तन्त्र में स्वीकृत तथा विरोधी अन्य तन्त्र में अस्वीकृत अर्थ प्रतितन्त्र सिद्धान्त कहलाता है।

इसी प्रकार आचार्य वरदराज इसका लक्षण करते हुए कहते हैं कि ''जो अर्थ अपने शास्त्र में सिद्ध हो, किन्तु अन्य शास्त्रों द्वारा निवारित हो उसे प्रतितन्त्र सिद्धान्त कहते हैं।''[18] इसी प्रकार आचार्य वरदराज अपनी व्याख्या में इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –''जैसे सर्वत्र ईश्वर की प्रामाणिकता मानी जाती है, किन्तु अन्य शास्त्रों में इसका निषेध किया गया है। अतः नैयायिकों के लिए यह प्रतितन्त्र सिद्धान्त है।''[19]

तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र से एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –''जैसे नैयायिक के मत में मन का इन्द्रिय होना क्योंकि यह समानतन्त्र वैशेषिक में असिद्ध है।''[20] तात्पर्य यह है कि –'जिस सिद्धान्त को एक शास्त्र (समान=एक) स्वीकार करता है और दूसरा उसका विरोध करता है, वह प्रतितन्त्र सिद्धान्त है। जैसे मीमांसक का शब्द–नित्यत्व का मन्तव्य तर्कभाषाकार ने यहाँ न्यायभाष्य का अनुसरण किया है। न्यायशास्त्र में मन की इन्द्रियों में गणना नहीं की गयी, वेदान्त आदि भी मन को इन्द्रिय नहीं मानते (परतन्त्रासिद्ध) तथापि वैशेषिक शास्त्र जो न्याय का समानतन्त्र है, उसमें मन को इन्द्रिय कहा गया है अतः न्यायशास्त्र में मन का इन्द्रियत्व प्रतितन्त्र सिद्धान्त है।

क्रमप्राप्त तृतीय अधिकरणसिद्धान्त का लक्षण करते हुए न्यायसूत्रकार कहते हैं कि –''जिस विषय की सिद्धि होने पर, उससे सम्बद्ध दूसरे अर्थ (विषय) के प्रकरण की सिद्धि स्वतः हो जाय, वह 'अधिकरणसिद्धान्त' कहलाता है।''[21] भाष्यकार वात्स्यायन इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ''जिस अर्थ (विषय) की सिद्धि होने में दूसरे अर्थ (विषय) सम्बद्ध होते हैं, अर्थात् उस सम्बद्ध अर्थों के विना वह (प्रस्तुत) अर्थ सिद्ध नहीं होता, वे सम्बद्ध अर्थ जिस प्रस्तुत अर्थ को आश्रय लेंते हैं, वह 'अधिकरणसिद्धान्त' कहलाता है।''[22] जैसे– शरीर, इन्द्रियादिकों से भिन्न, जाननेवाला एक नित्य तथा व्यापक जीवात्मा है, दर्शन तथा स्पर्शन दोनों इन्द्रियों से सब अर्थ के ग्रहण होने से अर्थात् जिसे मैंने पूर्वकाल में देखा था, वही मैं स्पर्श कर रहा हूँ। इस प्रकार देखना तथा स्पर्श करना इन दोनों का कोई एक कर्त्ता है।

आचार्य वरदराज इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –''जिसकी सिद्धि होने पर अन्य प्रकरण की सिद्धि हो जाती है, उसे अधिकरण सिद्धान्त कहा जाता है।''[23] जैसे पृथिवी आदि के कर्त्ता (ईश्वर) की सिद्धि हो जाने पर उस कर्त्ता की सर्वज्ञता आदि सिद्ध हो जाते हैं, क्योंकि जो सर्वज्ञ है, वही पृथिवी आदि

का कर्त्ता हो सकता है। ''तर्कभाषाकार आचार्य केशव मिश्र भी तार्किकरक्षा के उदाहरण से ही अधिकरण सिद्धान्त को स्पष्ट करते हैं।''[24]

सिद्धान्त के अन्तिम भेद 'अभ्युपगमसिद्धान्त' का लक्षण करते हुए न्यायसूत्रकार कहते हैं कि –''जो अर्थ सूत्रों में परीक्षित न हो अर्थात् न कहा गया हो, परन्तु शास्त्र में मिलता हो अर्थात् शास्त्र में सामान्यरूप से माना गया हो, उसके विशेष की परीक्षा करना (उसका विशेष परीक्षण करना) 'अभ्युपगम सिद्धान्त' कहलाता है।''[25] न्यायभाष्यकार 'वात्स्यायन' इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –''कोई ऐसा अर्थसमूह जो अपरीक्षित (सूत्र में न कहा गया हो या जिसकी सम्यक् परीक्षा न की गयी) हो, परन्तु शास्त्र में मिल जाय तो उसकी विशेष परीक्षा ही 'अभ्युपगमसिद्धान्त' कहलाती है।''[26] जैसे शब्द द्रव्य है, वह नित्य है या अनित्य'। यहाँ शब्द की द्रव्यत्वपरीक्षा तथा द्रव्य होने पर उसकी नित्यता या अनित्यता की यह विशिष्ट सूक्ष्म परीक्षा ही 'अभ्युपगमसिद्धान्त' है। 'अभ्युपगमसिद्धान्त' का उपयोग अपनी बुद्धि व उत्कृष्टता दिखलाने तथा प्रतिपक्षी की बुद्धि की अपकृष्टता के लिए किया जाता है।

'तार्किकरक्षा' में अभ्युपगम सिद्धान्त का लक्षण इस प्रकार निरूपित किया गया है– ''जो दूसरे शास्त्र में सिद्ध हो और अपने शास्त्र में भी स्वीकृत किया गया हो उसे अभ्युपगम सिद्धान्त कहा जाता है।'[27] जैसे वैशेषिक दर्शन में मन का इन्द्रियत्व सिद्ध है और न्याय ने भी उसको स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार अभ्युपगम सिद्धान्त का एक और लक्षण भी तार्किकरक्षाकार ने दिया है, जो इस प्रकार है– ''अन्य शास्त्र से किसी पदार्थ की सत्ता सिद्ध होने पर उसका विशेष रूप से परीक्षण करना अभ्युपगम सिद्धान्त है।''[28] जैसे काणाद शास्त्र प्रतिपादित मन की सिद्धि होने पर न्याय में मन का इन्द्रियत्व प्रतिपादन। अतएव कहा है–

''परतन्त्रोक्तः स्वतन्त्रे च निषिद्धार्थोऽभ्युपगम सिद्धान्त इत्याचार्या'।''

तर्कभाषाकार आचार्य केशवमिश्र ने भी न्यायसूत्र तथा न्यायभाष्य का ही अनुसरण किया है। अतः आचार्य अभ्युपगम सिद्धान्त को एक उदाहरण के द्वारा स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –''न्याय तथा मीमांसा में शब्द की नित्यता, अनियत्यता के विषय में विवाद है। मीमांसक शब्द को द्रव्य मानता है, किन्तु परीक्षा करने के लिए मीमांसक विना प्रमाण के ही यह स्वीकार कर लेता है 'अच्छा' शब्द को गुण मान लिया''।[29] यह मीमांसक का 'अभ्युपगम सिद्धान्त' है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ''प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा–हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।'' न्यायसूत्र 1/1/1
2. प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि।।–सांख्यकारिका (4)
3. आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्। न्यायसूत्र 1!1/9
4. अथ सिद्धान्तः। इदमित्यम्भूतञ्चेत्यभ्यनुज्ञायमानमर्थजातं सिद्धम् सिद्धस्य संस्थिति सिद्धान्तः। संस्थितिरित्थम्भावव्यवस्था–धर्मनियमः। वात्स्यायन भाष्य
5. तन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थितिः सिद्धान्तः। न्यायसूत्र 1/1/26
6. ''अस्त्ययमित्यनुज्ञायमानोऽर्थः सिद्धान्तः'' न्यायभाष्य (1/1/26) पर
7. ''अभ्युपेतः प्रमाणैः स्यादाभिमानिकसिद्धिभिः– तार्किकरक्षा 1/57
8. प्रामाणिकत्वेनाभ्युपगतोऽर्थः सिद्धान्तः– तर्कभाषा
9. 'स चतुर्विधः सर्वतन्त्रप्रतितन्त्राधिकरणाभ्युपगमसंस्थित्यर्थान्तरभावात्''– न्यायसूत्र 1/1/27
10. सिद्धान्त : सर्वतन्त्रादिभेदात् सोऽपि चतुर्विधः।। तार्किकरक्षा 1/58
11. स चतुर्धा सर्वतन्त्र–प्रतितन्त्र–अधिकरण–अभ्युपगम सिद्धान्तभेदात्। –तर्कभाषा।
12. सर्वतन्त्राविरुद्धस्तन्त्रेऽधिकृतोऽर्थः सर्वतन्त्रसिद्धान्तः।।–न्यायसूत्र 1/1/28
13. यथा–घ्राणादीनिन्द्रियाणि, गन्धादय इन्द्रियार्थाः, पृथिव्यादीनि भूतानि प्रमाणैरर्थस्य ग्रहणमिति।–न्यायभाष्यवात्स्यायन–(1/1/28)
14. सर्वतन्त्राऽविरुद्धोऽर्थः स्वतन्त्रेऽधिकृतश्च यः। स सर्वतन्त्रसिद्धान्तो यथा मानेन मेयधीः।।–तार्किकरक्षा 1/58 व 1/59
15. ''प्रमाणात्प्रमेयसिद्धिरित्येवं सर्वशास्त्रानुमतं स्वशास्त्रे चाभ्युपगमिति सर्वतन्त्रसिद्धान्तो भवतीति''– सारसंग्रह (पृष्ठ 181) ('तार्किकरक्षा' पर स्वयं वरदराजकृत सारसंग्रह नामक व्याख्या)
16. तत्र सर्वतन्त्रसिद्धान्तो यथा धर्मिमात्र सद्भावः।–तर्कभाषा
17. समानतन्त्र सिद्धः परतन्त्रासिद्धः प्रतितन्त्रसिद्धान्तः।–न्यायसूत्र 1/1/29
18. स्वतन्त्र एव सिद्धोऽर्थो परतन्त्रैर्निवारितः। प्रतितन्त्रो यथान्याये सर्वज्ञस्य प्रमाणता।।–तार्किकरक्षा 1/59, 60
19. ''ईश्वरः प्रमाणमिति योऽर्थः तन्त्रान्तरैर्निषिद्धः स्वशास्त्रे चाभ्युपगतो नैयायिकस्य प्रतितन्त्र सिद्धान्त इति।'' –सारसंग्रह (पृष्ठ 181)
20. नैयायिकस्य मते मनस इन्द्रित्वम्। तद्धि समानतन्त्रे वैशेषिके सिद्धम्।– तर्कभाषा पृ0 266
21. ''यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोऽधिकरणसिद्धान्तः''–न्याय सूत्र 1/1/30

22. यस्यार्थस्य सिद्धावन्येऽर्था अनुषज्यन्ते न तैर्विना सोऽर्थः सिध्यति, तेऽर्था यदधिष्ठानः सोऽधिकरणसिद्धान्तः।''—न्यायभाष्य (वात्स्ययायन)—1/1/30
23. अनुमेयस्य सिद्धयर्थो योऽनुषंगेण सिद्धयति। स स्यादाधार सिद्धान्तो जगत्कर्त्ता यथेश्वरः।।—तार्किकरक्षा 1/60
24. तृतीयो यथा क्षित्यादिकर्तुत्वसिद्धौ कर्त्तुःसर्वज्ञत्वम्''— तर्कभाषा पृ0 266
25. ''अपरीक्षिताभ्युपगमात् तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धान्तः। —न्यायसूत्र 4/31(1/1/31)
26. यत्र किञ्चिदर्थजातमपरीक्षितमभ्युपगम्यते सोऽभ्युपगमसिव्द्धान्तः।'' —न्यायभाष्य
27. साधितः परतन्त्रे यः स्वतन्त्रे च समाश्रितः। स ह्युपगमो न्याये मनसोऽनुमतिर्यथा।।—तार्किकरक्षा 1/61
28. तद्विशेषपरीक्षा वा सद्भावेऽन्यत्र साधिते। यथान्यत्र मनःसिद्धौ तस्याक्षत्व परीक्षणम्।।—तार्किकरक्षा 1/62
29. चतुर्थो यथा जैमिनीयस्य नित्यानित्यविचारो यथा भरतु, 'अस्तु तावच्छब्दो गुण' इति।—तर्कभाषा पृ0 266